स्वामी मुक्तानन्द के वचनों पर ध्यान

ईस्टर के उपलक्ष्य में सिद्धयोग सत्संग

ईशा सरदेसाई द्वारा लिखित

परिचय

सिद्धयोग पथ पर, हम यह सीखते हैं—और हमारा यह अनुभव है—कि श्रीगुरु की सिखावनियाँ जाति, धर्म, राष्ट्रीयता और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के भेदों के परे हैं। अभी हाल ही में, इस वर्ष की महाशिवरात्रि पर, हमारी श्रीगुरु, गुरुमाई चिद्विलासानन्द ने इस बारे में बात की थी। और यह वह सिद्धान्त भी है जिसके बारे में गुरुमाई जी के श्रीगुरु, बाबा मुक्तानन्द अकसर सत्संगों में सिखाया करते थे।

हर वर्ष ईस्टर पर, मुझे इस सत्य का पुनः स्मरण हो आता है। मैं ईस्टर मनाते हुए तो बड़ी नहीं हुई हूँ [कम से कम पारम्परिक और धार्मिक दृष्टिकोण से तो नहीं], परन्तु ईस्टर के विषय पर गुरुमाई जी द्वारा प्रदान की गई सिखावनियों के कारण और यह पर्व जिसका प्रतीक है, उसके प्रति जो सम्मान वे हमेशा दर्शाती हैं, उसके कारण मुझे इस पर्व के साथ एक अपनापन-सा महसूस होता है। जैसा कि गुरुमाई जी सिखाती हैं, ईस्टर जागृति का और पुनः जागृति का समय है। यह जीवन के मूल्य को याद करने का समय है।

ईस्टर के पर्व के उपलक्ष्य में ४ अप्रैल, २०२६ को गुरुमाई जी के साथ हुए सिद्धयोग सत्संग में ये विषय-वस्तुएँ स्पष्ट थीं। इस सत्संग का शीर्षक था, "वसन्त के उमंगोत्साह को अपने श्वास में भर लो" और इसका सीधा वीडिओ प्रसारण श्री मुक्तानन्द आश्रम स्थित, भगवान नित्यानन्द मन्दिर से किया गया था। इसका आयोजन सिद्धयोग वैश्विक हॉल में हुआ जिसे गुरुमाई जी ने नाम दिया है, "जगमगाता नीलाकाश।"

सत्संग में हमने भगवान शिव का आवाहन किया—जो आदिगुरु हैं, साक्षात परमात्मा हैं, जो इस प्रकट जगत के समस्त कार्यकलाप व इसमें उत्पन्न होने वाले नानाविध परिवर्तनों का संचालन करते हैं। भगवान शिव के संरक्षण में ही जीवन का आरम्भ व अन्त होता है और उसका पुनः आरम्भ होता है। हमने भगवान शिव के डमरू का ऊर्जस्वी नाद सुना, जो आदि नाद 'ॐ' से स्पन्दित है। हमने संगीत-मण्डली द्वारा गाया गया उल्लासभरा स्तोत्र 'शिव शिव शिव' भी सुना। हमने राजसी दरबारी

राग में 'जय जय शिव शम्भो' का नामसंकीर्तन किया और उसके बाद हमने श्रीगुरु की आरती की। हमने संस्कृत व दक्षिण एशियाई धर्मों के विद्वान, श्री बेन विलियम्स् की वार्ता भी सुनी, वे हमसे काशी से बात कर रहे थे [जिसे बनारस या वाराणसी भी कहा जाता है]। उत्तर भारत में स्थित यह वह शहर है जिसे भारतीय संस्कृति व शास्त्रों में भगवान शिव की नगरी माना जाता है।

गुरुमाई जी के कहने पर श्री बेन ने बाबा मुक्तानन्द की आध्यात्मिक आत्मकथा, 'चित्शक्ति विलास' से एक उद्धरण पढ़ा जिसे श्रीगुरुमाई ने चुना था। उन्होंने बाद में मुझे बताया कि 'चित्शक्ति विलास' से यह उनका *मनपसन्द* उद्धरण है। यह एक ऐसा उद्धरण है, जिस पर उन्होंने तब से गहराई से चिन्तन-मनन किया है जब उन्होंने अपनी किशोरावस्था में इसे पहली बार पढ़ा था, और पिछले अनेक वर्षों में उन्होंने अनेक सिद्धयोगियों व मित्रगण से इस कहानी के विषय में चर्चा भी की है। इसलिए जब गुरुमाई जी ने उनसे यह उद्धरण पढ़ने को कहा तब वे इस संयोग को देखकर आश्चर्यचकित हुए।

इतना ही नहीं, श्री बेन ने मुझसे कहा कि पिछले दो वर्षों से वे बाबा जी के शब्दों का विस्तृत रूप से गहन अध्ययन करने में रत हैं। हर सुबह नामसंकीर्तन व ध्यान करने से पहले, बाबा जी की पुस्तकों से उद्धरण पढ़ने को उन्होंने अपना अभ्यास बना लिया है। उन्होंने बताया, "अब तक मुझे जो भी सेवा-कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, यह उनमें से एक सबसे सुन्दर और समयानुरूप मिला हुआ सेवा-आमन्त्रण था यानी बाबा जी के वचनों को पढ़ना, जिनके साथ फ़िलहाल मैं एक नया रिश्ता गढ़ रहा हूँ, और फिर मैंने पाया कि मुझे सेवा के रूप में जो उद्धरण पढ़ना था, वह तो वही उद्धरण है जो मुझे बहुत ही प्रिय रहा है।"

इस उद्धरण में बाबा जी एक महात्मा जी का प्रसंग सुनाते हैं जिनकी मृत्यु निकट थी। महात्मा जी जानते थे कि पृथ्वी पर उनका जीवनकाल शीघ्र ही समाप्त होने वाला है, अतः उन्होंने इस बात का विशेष ध्यान रखा कि जाने से पहले वे उन सभी को धन्यवाद दें जिन्होंने जीवनभर उनका साथ दिया है। अन्त में, उन्होंने अपने शरीर को धन्यवाद दिया। बाबा जी विस्तार से उन विशेष कृतज्ञतापूर्ण वचनों के बारे में बताते हैं जो उन महात्मा जी ने अपने शरीर से कहे और फिर बाबा जी संक्षेप में, हमें वह मुख्य सिखावनी बताते हैं जो हमें इस कहानी से सीखनी चाहिए।

श्रीगुरु के वचनों पर 'ध्यान' की इस अगली शृंखला के लिए, श्रीगुरुमाई ने मुझसे कहा है कि मैं 'चित्शक्ति विलास' पुस्तक से बाबा जी के शब्दों पर केन्द्रण करूँ। गुरुमाई जी ने समझाते हुए कहा कि लोगों के लिए यह जानना अनिवार्य है कि बाबा जी यहाँ मानव-शरीर और मानव-जीवन के मूल्य के बारे में हमें क्या बता रहे हैं। इस संसार में अधिकांशतः मानव-जीवन को मूल्यहीन समझा

जाता है। हर दिन ही लोगों की जानें जा रही हैं—युद्ध में, रोग के कारण, अकाल, प्राकृतिक आपदाओं और ऐसी ही अन्य दुःखद घटनाओं के कारण। जैसा कि मैंने पहले लिखा है, अपने चारों ओर इतने बड़े पैमाने पर लगातार और निर्दयता से मृत्यु होते देखकर उसके प्रति संवेदनहीन हो जाना स्वाभाविक-सा लगने लगता है। ऐसा विशेष रूप से शायद तब होता है जब ये मौतें हमें अपने से दूर की महसूस होती हैं और ऐसा लगता है कि इन मौतों का हमसे कोई सम्बन्ध नहीं है अर्थात् जब इन मौतों का सीधा असर उन पर नहीं होता जो हमारे परिचित हों या उन समुदायों पर नहीं होता जिनसे हम जुड़े होते हैं।

मेरे विचार में, अगर हम मृत्यु के इतने आदी हो जाएँ, तब जो हो सकता है वह यह है कि जीवन भी हमारी दृष्टि में अपनी कुछ आभा खो देता है। साफ़-साफ़ कहूँ तो जब *बहुत बड़ी संख्या में* मौतें इस प्रकार होती हैं जो अगर आम न हो रही होतीं तो ये दिल दहला देने वाली लगतीं और इसका परिणाम यह होता है कि हमारी नज़रों में जीवन का रंग भी कुछ फीका पड़ जाता है। मैं जानती हूँ कि यह विरोधाभासी लगता है। परन्तु, मेरा यह मानना है कि यदि हम किसी सीमा तक यह स्वीकार कर लेते हैं कि दुनिया ऐसे ही चलती है तो एक तरह का भाग्यवादी दृष्टिकोण हम पर हावी हो सकता है, यानी हमारे अन्दर यह भावना जगने लगती है कि यह तो अटल है, यही भाग्य का लेखा है—कि दूसरे मरते हैं, हम भी मरेंगे, हम सब तो सिर्फ़ इस प्रतीक्षा में खड़े एक संख्या मात्र हैं कि जब बुलावा आएगा तो हमें भी जाना होगा। हो सकता है कि जीवन के प्रति हमारा दृष्टिकोण, हमारा रवैया अनादरपूर्ण हो जाए—यानी हमें इसका विचार ही न रहे कि हम स्वयं के साथ कैसा व्यवहार करते हैं, दूसरों के साथ हम कैसे पेश आते हैं। वह एक अनकहा-सा प्रश्न, वह प्रश्न जो हमारे चेतन मन की सतह के ठीक नीचे हलचल मचा रहा है, और वह है : "इस सबका महत्त्व ही क्या है?"

श्रीगुरु की सिखावनियाँ इतनी शक्तिशाली हैं, इसका एक कारण यह है कि जब हम इन सिखावनियों के साथ कार्य करते हैं, जब हम पूरी लगन से और ध्यान देकर उन पर चिन्तन-मनन करते हैं तो हम इस प्रश्न के उत्तर तक पहुँच सकते हैं। हमें उस उत्तर की अनुभूति हो सकती है। जीवन का *महत्त्व है,* जीवन *ज़रूर मायने रखता है* । हमें अपनी सत्ता में, अपने अन्दर यह पता होता है। जीवन बहुमूल्य है। ऐसा क्यों है इसके हम अनेकानेक कारण गिना सकते हैं।

'ध्यान' की यह अगली शृंखला, पिछली शृंखलाओं से कुछ अलग होगी। एक बात तो यह है कि मैं बाबा जी के शब्दों पर केन्द्रण करूँगी। इसके अतिरिक्त, अबकी बार, मैं अपने चिन्तन-बिन्दुओं को और भी अधिक . . . *संक्षिप्त* . . . रखूँगी। मैंने पहले बताया है कि 'श्रीगुरुमाई के वचनों पर ध्यान' के सन्दर्भ में आपने जो विचार व अनुभव साझा किए हैं, उनमें झलक रही अन्तर-दृष्टियाँ कितनी गहन

व अद्‌भुत हैं। इनसे यह बात स्पष्ट होती है कि श्रीगुरु के वचनों पर और उन वचनों से जुड़े जो विचार व प्रश्न मैंने अब तक आपके समक्ष रखे, उन पर आप बहुत गहराई से चिन्तन-मनन करते रहे हैं। हमारा 'डिजिटल साधना सर्कल' प्रेरणा पाने व सीखने का एक बहुत ही समृद्ध स्रोत रहा है—मेरे लिए तो निश्चित ही ऐसा रहा है और मुझे उम्मीद है कि आपके लिए भी ऐसा ही रहा होगा।

इसीलिए, इस महीने मैं इसे एक तरह से *आपको* सौंप रही हूँ। निस्सन्देह, मैं अपने कुछ विचार साझा अवश्य करूँगी। मैं ख़ुद अपने आप से जो प्रश्न पूछ रही हूँ, उन पर विचार करने हेतु आपको आमन्त्रित ज़रूर करूँगी। पर मैं इस बात के लिए उत्सुक हूँ कि *आपके* विचारों को प्रमुख स्थान मिले—और इस प्रक्रिया में हम साथ मिलकर खोज करें कि बाबा जी द्वारा पचास से भी अधिक वर्षों पूर्व लिखे उनके ये शब्द कैसे आज भी इतने ऊर्जस्वी और जीवन्त बने हुए हैं।

'स्वामी मुक्तानन्द के वचनों पर ध्यान' की शृंखला पूरे अप्रैल माह के दौरान सिद्धयोग पथ की वेबसाइट पर, विभिन्न भागों में पोस्ट की जाएगी। मुझे यक़ीन है कि आप मेरी इस बात से सहमत होंगे कि यह कितना सटीक व उत्कृष्ट तरीक़ा है जिससे वसन्त-ऋतु का स्वागत करते हुए हम मई माह में बाबा जी के जन्मदिवस माह के अपने महोत्सव की ओर बढ़ रहे हैं।

© २०२६ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।